अशोक कुमार मीणा

आदिवासी अस्मिता से आशय

भूमण्डलीकरण एवं उच्च तकनीकी के इस दौर में आदिवासियों पर चर्चा करना ऐसा लगता है जैसे अतिसभ्य बुद्धिजीवियों के बीच पाषाणयुगीन मानव समूहों के बारे में बात की जा रही है। अतिसभ्य समाज और आदिवासियों के मध्य भौतिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक स्तर पर कई-कई युगों का जो अन्तराल दिखाई देता है उसी के कारण अतिसभ्य एवं आदिम सरोकार किसी भी भाषा में आपस में संवाद करने की स्थिति में नहीं है। हरिराम मीणा के शब्दों में ''इस अन्तराल से परे आदिम समाजों की अस्मिता के सवालों को जब इस उत्तर-आधुनिक एवं वैश्विक दौर में समझने का प्रयास किया जायेगा तो एक छोर पर वह आदिम समाज है जिन्हें हम आदिवासी के नाम से जानते हैं, ये लोग अभी भी जीवन के प्रति आदिम दृष्टिकोण अपनाये हुए हैं। दूसरी ओर मुख्य राष्ट्र-समाज का विकसित एवं उच्च तकनीक से सम्पन्न वह वर्ग सामने आता है जो राष्ट्र-समाजों की सीमाओं को भी तोड़ता हुआ वैश्विक अग्रणी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।''[1]

आदिवासी अस्मिता का विश्लेषण करने के लिए 'आदिवासी' शब्द की व्याख्या के साथ-साथ आदिवासी जन-समुदायों की पहचान भी अनिवार्य है। भारतीय समाज का अलग-थलग पड़ा यह हिस्सा अपनी संस्कृति को अनोखी

---

1 आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2013, पृ. 168.

मान्यताओं, परम्पराओं एवं संस्कारों से आज भी जीवित रखे हुए हैं। पूरे देश के विभिन्न अंचलों में आदिवासी जन-समुदाय बिखरे पड़े हैं जिनमें से अधिकांश का परस्पर कोई सम्पर्क नहीं है। इन समुदायों की सांस्कृतिक जीवनशैली में कमोवेश अन्तर दिखाई देता है फिर भी इनका समेकीकृत स्वरूप आदिवासी जन की एक छवि को इंगित करता है। हरिराम मीणा के शब्दों में ''यह छवि ही आदिवासी की पहचान है और इस पहचान को मानव समाज के रूप में सम्मान देना ही आदिवासी अस्मिता कही जा सकती है।''[1]

आदिवासी शब्द 'आदि' और 'वासी' इन दो शब्दों से मिलकर बना है। 'आदि' अर्थात् जो सबसे पहले से है और 'वासी' अर्थात् निवासी। गंगासहाय मीणा ने 'आदिवासी' शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है - '' 'आदिवासी' देश के मूल निवासी माने जाने वाले तमाम आदिम समुदायों का सामूहिक नाम है।''[2] 'आदिवासी' पद में 'आदि' इन जन-समुदायों के आदिम होने का बोध कराता है। आदिवासी शब्द एक पहचान को चिन्हित करता है। यह पहचान उनकी अस्मिता से जुड़ी हुई है। इस तरह भारतीय समाज में आदिवासी उन समूहों एवं समुदायों के लिए प्रयुक्त होता है जो अपनी समान जीवन स्थितियों एवं दुःख-दर्दों के साथ रह रहे हैं एवं जिनमें मूल मानवता का स्वर सुनाई देता है।

भारत में आदिवासियों का इतिहास संघर्ष का इतिहास रहा है। सदियों पहले आदिवासियों को सभ्यता से बहिष्कृत कर जंगलों में धकेल दिया गया। इन जन-समुदायों ने जंगलों में रहते हुए अपनी संस्कृति की विरासत कायम रखी और

---

1 आदिवासी दुनिया : हरिराम मीणा, पृ. 169.

2 आदिवासी साहित्य विमर्श, गंगासहाय मीणा, पृ. 19.

पूरे आत्म-सम्मान के साथ जीते रहें। इसी संदर्भ में रमणिका गुप्ता ने लिखा है - ''एक पराजित समूह होते हुए भी आदिवासियों ने अपनी संस्कृति, भाषा, अपने जीने की सामूहिक शैली, परम्पराओं और रीति-रिवाजों की विरासत को जिंदा रखा है।''[1] जब-जब आदिवासियों के संस्कार, रीति-रिवाज, परम्परा व अस्मिता को नष्ट करने का प्रयास किया है, तब-तब ये लोग बाहरी घुसपैठ के खिलाफ उठ खड़े हुए है।

असल में आदिवासियों की अस्मिता का प्रश्न उनके जल, जंगल, जमीन तथा प्राकृतिक संसाधनों के अधिकारों से जुड़ा हुआ है। आदिवासियों के पास अगर जंगल और जमीन न हो तो उस आदिवासी की पहचान ही खत्म हो जाती है। अंग्रेजों से लेकर शोषण के तमाम तन्त्रों ने आदिवाससियों पर अत्याचार किया। अपनी धूमिल अस्मिता व आत्मसमान को बचाने के लिए आदिवासियों ने अंग्रेजी राज में कड़ा संघर्ष किया। आदिवासी क्षेत्रों में अंग्रेजों के द्वारा अतिक्रमण के विरोध में आबाज भी उठी। अंग्रेजों के पक्षपात, अन्याय और अत्याचार के खिलाफ 'कोल विद्रोह' (1785 ई.) 'संथाल विद्रोह' (1855 ई.), 'मुण्डा विद्रोह' (1900 ई.) आदि अनेक जन-आन्दोलन हुए। इन आन्दोलनों के माध्यम से आदिवासियों ने अपनी अस्मिता, अधिकारों, जीवन एवं भूमि की सुरक्षा के साथ अपने सम्मान व अस्तित्व को पुनः स्थापित किया। रूपचन्द्र वर्मा ने 'कोल विद्रोह' के संबंध में लिखा है - ''इसे 1857 की महान क्रान्ति के पूर्व का

---

1 आदिवासी अस्मिता के प्रश्न, रमणिका गुप्ता, हाशिये का वृत्तांत, संपा. दीपक कुमार, देवन्द्र चौबे, पृ. 353.

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा जा सकता है।''[1] 'मुंडा विद्रोह' सेठ, साहूकारों द्वारा आदिवासियों के शोषण के विरुद्ध तीखा आक्रोश था जो आदिवासी अस्मिता के उदय में मिल का पत्थर साबित हुआ। मुंडा विद्रोह के संबंध में नदीम हसनैन ने लिखा है ''सभी प्रकार के शोषण और अत्याचारों के विरुद्ध मुंडा विद्रोह भी जनजातीय आक्रोश का उत्कृष्ट उदाहरण है।''[2]

इस तरह आदिवासियों ने हमेशा शोषण का विरोध किया। कहीं वन विभाग के कर्मचारियों व ठेकेदारों के खिलाफ, कहीं दिकुओं, जमींदारों, महाजनों की लूट व अत्याचार के खिलाफ, कहीं प्रशासन पुलिस के खिलाफ अनेक लड़ाईयाँ लड़ी। जब-जब आदिवासी अस्मिता पर खतरा लगा तब-तब इन जन-समुदायों ने अपनी अस्मिता व अधिकारों के लिए संघर्ष किया और सशस्त्र विद्रोह भी किये।

आजादी से पहले अंग्रेजों ने आदिवासी क्षेत्रों में अपनी राजस्व नीति के तहत स्थायी बंदोबस्त की व्यवस्था थोपकर जमीन का अधिकार जमींदारों के हाथों में दे दिया। आदिवासी, जो जमीन के मालिक हुआ करते थे, रैयत-दर-रैयत बन गए। इसके बाद धीरे-धीरे सूदखोरों व गैर आदिवासियों ने धोखे से या जबरदस्ती आदिवासियों की जमीन हस्तांतरित करा ली जिससे आदिवासी भूमिहीन खेतीहर मजदूर बन गए या बंधुआ बन गए। इस तरह अंग्रेजों ने इनकी संस्कृति के साथ खिलवाड़ किया लेकिन आजादी के बाद मामला और बिगड़ गया।

आजादी के बाद शासकीय गुटों ने जनजातीय समुदायों की सामाजिक संरचना को ध्वस्त कर दिया जिससे उनके सामंजस्यपूर्ण जीवन में अनेक

1 भारतीय जनजातियाँ, रूपचन्द्र वर्मा, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 2003, पृ. 46.

2 जनजातीय भारत, नदीम हसनैन, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 265.

समस्याएँ उत्पन्न हुई। रोजगार खत्म होने से आदिवासी सस्ते मजदूरों की जमात बन गए। इसका फायदा बाहरी लोगों ने उठाया और आदिवासियों के कंधों पर दासता का बोझ डाल दिाय। आजादी के बाद आदिवासियों की स्थिति को स्पष्ट करते हुए रमणिका गुप्ता ने लिखा है कि ''पूँजीपतियों के विकास व वन दमन के लिए आदिवासियों के विशाल जनसमूह को निस्सहाय बना दिया। उन्हें इस हालत में रखने की साजिश रची गई ताकि वे पूँजीपतियों के लिए सस्ते मजदूर बनकर उनके हित-साधन की दमनकारी मशीन का एक पूर्जा बन जाएं।''[1]

इस तरह आजादी के बाद विकास के नाम पर आदिवासियों का विनाश हुआ। विकास के लिए सरकार ने उनकी जमीन अधिगृहित की और उन्हें विस्थापित कर दिया है। रोजगार की तलाश में उन्हें पलायन कर दूसरे प्रदेशों में जाना पड़ रहा है जिससे उनकी भाषा और संस्कृति दोनों खत्म होती जा रही है। ''सरकार ने विकास के नाम पर बड़े-बड़े बाँध बनाए जिससे लाखों लोग विस्थापित हुए। हमारे देश की विकास नीति का लक्ष्य होना चाहिए था - विकास में सबको समान अधिकार की प्राप्ति। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। विकास तो हुआ, पर कुछ चुनिंदा लोगों का असंख्य लोगों की कीमत पर, खासकर आदिवासियों की कीमत पर। राष्ट्रहित के नाम पर आदिवासी लोगों की जमीन अधिगृहित कर उन्हें विस्थापित ही नहीं किया गया, बल्कि उनके संदर्भ में संविधान में प्राप्त मूल अधिकारों का भी उल्लंघन किया गया। इन विकास परियोजनाओं से इन आदिवासी प्रदेशों अथवा क्षेत्रों का आर्थिक संतुलन भी बिगड़ गया।''[2] इस तरह

---

1 आदिवासी अस्मिता के प्रश्न, रमणिका गुप्ता, हाशिये का वृत्तांत, संपा. दीपक कुमार, देवेन्द्र चौबे, पृ. 357.

2 वही, पृ. 357-358.

विस्थापित आदिवासी अपने अस्तित्व व अधिकारों के लिए आज संघर्षरत है।

आज आदिवासी समुदाय सबसे विकट स्थिति से गुजर रहा है। जल, जंगल, जमीन और जज्बात उनकी सबसे बड़ी समस्या है। जंगलों को साफ करके जिस जमीन को वे खेती लायक बनाते है उससे उनका आत्मीय रिश्ता होता है इसलिए वह जमीन उनके लिए उनकी संस्कृति व पहचान का हिस्सा बन जाती है। ''आदिवासियों की अस्मिता का प्रश्न जहाँ उनके नाम की परिभाषा से गहरा संबंध रखता है, वहीं वह उनकी सामाजिक संरचना और जीवनयापन के साधन जल, जंगल, जमीन से जुड़ा है। उसका उद्‌गम उसकी पहचान को पुष्ट करता है तो उसकी विरासत, भाषा, शिक्षा, संस्कृति और जीवनशैली पहचान को जिंदा रखती है। इनकी रक्षा किए बिना उसकी अस्मिता की रक्षा नहीं हो सकती है।''[1]

आज हम देख रहे हैं कि वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप बढ़ते औद्योगीकरण ने आदिवासी-उपस्थिति को गौण बना दिया है। उसकी मूल संवेदनाओं, कल्पनाओं और भावनाओं को कुंठित कर दिया है। आदिवासी समाज आज अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में अनेक समस्याओं और असमानताओं से जूझ रहा है। सत्ता और राजनीति ने आदिवासी समुदाय को सबसे ज्यादा निराश किया है। राजनेताओं ने लगातार 'लोकतंत्र', 'समानता', 'मुक्ति' जैसे शब्दों को उछालकर आदिवासी समुदाय के साथ छल किया है। विकास के लिए सरकार द्वारा की जाने वाली अनेक घोषणाओं के बावजूद भी आदिवासी समुदाय आज भी सभ्यता की रोशनी से कोसों दूर आदिमयुगीन ढर्रे पर जीवन जीने के लिए विवश है।

1 आदिवासी अस्मिता के प्रश्न, रमणिका गुप्ता, पृ. 351.

सभ्यता की रोशनी इनके लिए बेमानी है। नई सभ्यता ने निश्चित रूप से मानव की अविकसित चेतना का विकास किया है लेकिन विकास की अंधी दौड़ ने आदिवासी समाज को दौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है। एक राह उसे अतीत की ओर ले जाती है जिसमें प्राणवत्ता, सरलता और समानता युक्त नैसर्गिक संरचना है। दूसरी राह उसे जीवन की ओर ले जाती है जिसमें पग-पग पर संघर्ष और सपनों से कटा लगा परजीवी तंत्र है। इस परजीवी तंत्र ने ही उनके (आदिवासी) समक्ष अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर दी है। आदिवासियों के लिए यह विडम्बना है कि जिन तत्वों के उन्मूलन के लिए उनके पूर्वजों ने टक्कर ली थी, आज भी वे तत्व यथावत् विद्यमान है।

आदिवासियों की अस्मिता का प्रश्न उनके जल, जंगल, जमीन और उनके प्राकृतिक संसाधनों के अधिकारों से जुड़ा है। आज इस समुदाय पर सबसे बड़ा खतरा अपनी अस्मिता के गायब होने का है। आदिवासियों के अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा के लिए जरूरी है उनकी भाषा, संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज, सामूहिक जीवनशैली आदि में व्यवधान डाले बिना उनकी उन्नति के लिए काम किया जाये। आदिवासियों को शिक्षित कर उन्हें संवैधाानिक अधिकारों के प्रति जागरूक करके आत्मनिर्णय व स्वशासन का अधिकार प्रदान किया जाए। जिससे सदियों से हाशिए पर रहा यह समाज विकास की परम्परा में अपनी जगह सुनिश्चित कर सकें।